श्राद्ध विज्ञान (SCIENCE OF MANES)

प्रो. कैलाश चतुर्वेदी
सेवानिवृत्त निदेशक, संस्कृत शिक्षा, जयपुर

मूकं करोति वाचालं, पंगुं लंघयते गिरिम्।
यत्कृपा तमहं वन्दे, परमानन्दमाधवम्।।

प्रिय बन्धुओं।

आज जिस विश्वव्यापी विषय को लेकर चर्चा हेतु हम उपस्थित हुए हैं, वह है कोटि-कोटि भारतीयों का श्रद्धेय एवं स्तुत्य 'श्राद्धविज्ञान'। महालय की इस पावन-पितृतर्पण अवधि में इसके प्रस्तुतीकरण की पृष्ठभूमि में न केवल उन करोड़ों लोगों की भावना का सर्मथन है, जो प्रतिवर्ष इस आश्विनमास में अपने पूर्वजों के प्रति अपने श्रद्धा-सुमन अर्पित करते हैं, अपितु सहस्राब्दियों पूर्व हमारे ऋषियों एवं शास्त्रों द्वारा 'श्राद्ध' की वैज्ञानिकता एवं अपरिहार्यता को लेकर वेद-ब्राह्मण उपनिषद् ग्रन्थों की प्रमाणिकता को सार्वजनिक रूप से उद्घाटित करते हुए, उन अभिनिवेशि मनुष्यों को भी 'श्राद्ध' विज्ञान की सत्यता, गहनता एवं महनीयता से परिचित कराना है, जो भद्र समाज को इसके विरुद्ध भ्रान्तियाँ फैला कर अविश्वास के अंधकार में ढकेलना चाहते हैं।

स्वतन्त्रता से पूर्व तक भारतीयों में श्रद्धा तत्व एवं श्राद्ध के प्रति पूर्ण विश्वास था, किन्तु विगत शताब्दियों में इसका निरन्तर ह्रास हुआ है, हमने विधिपूर्वक यज्ञ करना छोड़ दिया, शास्त्रीय परम्पराओं को त्याग दिया और व्यर्थ के आडम्बरों को अपना लिया, जिसका दुष्परिणाम आज समग्र विश्व भोग रहा है। आज से लगभग नौ-दशक पूर्व इस युग के अर्वाचीन शंकराचार्य स्व. पं. मधुसूदन ओझा एवं उनके पटुमतिलक्षण शिष्य स्व. पं. मोतीलाल शास्त्री ने तत्समय हमारी इस सांस्कृतिक पतनावस्था को परिलक्षित कर लिया था और उन प्रचलित समस्त परिवादों का शास्त्रोक्त आधार पर खण्डन करते हुए 'श्राद्ध' को सर्वथा वैदिक एवं सनातन प्रक्रिया घोषित करते हुए, 'श्राद्धविज्ञान' की सार्थकता को भारतीय समाज के समक्ष प्रस्तुत किया था। आज हम उन

वैज्ञानिक तथ्यों को समझने का यथासम्भव प्रयास करेंगे।

किन्तु, इसके पूर्व कि हम अपने प्रामाणिक-तथ्यों पर चर्चा करें, एक दृष्टि उन भ्रान्तियों पर डालना आवश्यक है, जो तथा कथित बुद्धिजीवी एवं स्वयं को माडर्न घोषित करने वाले आधुनिकों ने भ्रान्तियों के रूप में भद्रसमाज में फैला रखी हैं, जरा सुनिए।

१) मृत प्राणियों को निमित्त बनाकर श्राद्ध क्यों करे ?

२) मृत्यु के बाद भस्मीभूत देह के अतिरिक्त बचता ही क्या है ? भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमन कुत: ?

३) यदि एक पल के लिए 'श्राद्ध' को मान भी लें, तो बताइए लाखों कोस दूर बैठे पितर, ब्राह्मण-भोजन से तृप्त कैसे हो सकते हैं ? अपने मकान के प्रथम तल पर भोजन परोस कर तृतीय तल पर बैठे व्यक्ति को तो तृप्त करके दिखाइए। अपने समर्थन में ऐसे लोग चार्वाकदर्शन अवश्य बघारेंगे।

''मृतानामिह जन्तूनां श्राद्धं चेत्तृप्तिकारणम्।

गच्छतामिह जन्तूनां व्यर्थं पाथेय कल्पना।।''

४) यद्यपि स्वामी दयानन्द ने वेदों की महत्ता एवं भारतीय-जीवन में अपरिहार्यता स्वीकार की थी, किन्तु उनके अनुयायी भी 'श्राद्ध' एवं 'श्रद्धा' में मूलभूत अन्तर को भली-भाँति नहीं समझ पाये और 'श्राद्ध' को वेद-विरुद्ध घोषित करने में देरी न की। आश्चर्य होता है, किस प्रकार ऋग्वेद के सूक्त, शताधिक मन्त्र, ब्राह्मण, उपनिषद्प्रमाण उनकी दृष्टि से ओझल हो गए।

५) आधुनिक एवं पाश्चात्य शिक्षा से सरोबार लोग भी इसका उपहास करने में पीछे नहीं है। उनके अनुसार यह ढकोसला ब्राह्मणों द्वारा १५ दिन तक मुफ्त-स्वादिष्ट भोजन का जुगाड़ मात्र है। अन्यथा श्राद्ध-ब्राद्ध कुछ नहीं हैं।

केवल भारतीय ही नही, पाश्चात्य-संस्कृति में 'It is a blind Faith' कह कर इसकी भर्त्सना की जाती है। ये सब लार्ड मैकाले द्वारा स्थापित पाश्चात्य शिक्षापद्धति की देन है।

अस्तु आज हम इन समस्त अभिनिवेशि-बुद्धिजीवियों को 'श्राद्धविज्ञान' की सर्वथा प्रामाणिकता,

वैज्ञानिकता और अपरिहार्यता को लेकर जिन प्रमाणों का उल्लेख करेंगे, हमें विश्वास है कि वे भी अविश्वास के धरातल से उठ कर 'श्राद्ध' की महत्ता के समक्ष नतमस्तक हो जाऐगे–

इसके पूर्व कि हम वेदोक्त शास्त्रीय प्रमाणों की चर्चा करें एक सूक्ष्म दृष्टि, विश्व के उन धर्मों एवं समाजों पर भी डालना प्रासंगिक होगा, जो प्रकारान्तर से किसी न किसी रूप में अपने मृत पूर्वजों के लिए 'श्राद्धकर्म' करते हैं–

अफ्रीकी लोग 'वोडा' उत्सव के रूप में अपने पूर्वजों के प्रति 'श्रद्धा' प्रकट करते हैं, उन्हें नृत्यगीत द्वारा आमंत्रित करते हैं फल–फूल अर्पित करते हैं। ब्रिटिश लोग आत्माओं को बुलाते हैं और उनसे वार्ता तक करने का दावा करते हैं। शेक्सपीयर की सुप्रसिद्ध रचना Macbeth में Three witches का आगमन और जीवित लोगो से वार्तालाप में इसका एक संकेत है। मारीशस के लोग Sia-de-los-Muertos का आयोजन कर मृतकों के प्रति 'श्रद्धा' व्यक्त करते हैं। बौद्ध–धर्मावलम्बी प्रति वर्ष १५ दिन तक पूर्वजों का श्राद्ध करते हैं। कम्बोडिया, जापान, फिलीपीन्स, कोरिया सभी देशों में 'श्राद्ध' प्रकारान्तर से सम्पन्न किया जाता है। मुस्लिम ईसाई धर्म में प्रतिवर्ष मजारों एवं कब्रों पर केंडिल जला कर मृतात्मा के प्रति श्रद्धा व्यक्त करते हैं। यह 'श्राद्ध' नहीं तो और क्या है।

चलिए, हमें उनसे अधिक प्रयोजन नहीं है, हम अपनी १५००० वर्ष पुरानी वैदिक परम्परा की और लौटते हैं, जिसमें मृत–पितरों के श्राद्ध की अनिवार्यता एवं महत्ता को पदे–पदे समझाया गया है।

स्थूल शरीर त्यागने के पश्चात् हमारा आत्माअंगुष्ठ मात्र सूक्ष्मशरीर धारण कर चन्द्रलोक को प्रस्थान करता है, जैसा कि कौषीतकि उपनिषद् के प्रथमाध्याय का द्वितीय मन्त्र कहता है–

''ये वै के च अस्माल्लोकात् प्रयान्ति, चन्द्रमसमेव ते सर्वे गच्छन्ति''

अर्थात् इस शरीर को छोड़ कर समस्त आत्माएँ एकबार सीधे चन्द्रलोक को प्रस्थान करती हैं।

यह 'प्रत्यगात्मा' अर्थात् चन्द्रलोक जाने वाली सूक्ष्म–आत्मा वहाँ पहुँच कर दो भागों में विभक्त हो जाती है– महानात्मा और भूतात्मा। शास्त्रोक्त विवेचन के अनुसार आत्मा १३ माह की अवधि में वहाँ पहुँचती है और प्रथम भाग महानात्मा के रूप में वहीं 'चिरस्थित' हो जाती हैं, वे ही कालान्तर में हमारे स्तुत्य 'पितर–गण'

कहलातें हैं। द्वितीय भाग 'भूतात्मा' अपने पूर्व संचित कर्मानुसार मुक्ति अथवा इस लोक में पुनरागमन करता है एवं क्रियमाण कर्मो के प्रतिफल में अच्छी अथवा बुरी योनि में जन्म लेता है। 'श्राद्ध' क्यों करें ? इसका क्या फल है ? इसका उत्तर यही है, कि 'चन्द्रलोक' स्थित महानात्मा ही हमसे मरणोत्तर काल के पश्चात् भी जुड़ा रहता है और उन्हीं स्ववंशजों की तृप्ति के लिए 'श्राद्ध' कर्म आवश्यक है, जिसका प्रतिफल है पितृ-तृप्ति, सन्तति-वितान, समृद्धि, सुरक्षा और नहीं करने के दुष्परिणाम हैं। पिण्ड-क्षीणता अर्थात् जीन्स की न्यूनता अथवा समाप्ति, शुक्रक्षीणता, वंशोच्छेद, अभाव, आकस्मिक दुर्घटनाएं, अकाल मृत्यु इत्यादि।

इस पर आधुनिक लोग फिर आक्षेप करेंगे कि ये कोरी बकवास है- कैसी चन्द्रलोक की यात्रा ? कैसे पितर ? कैसा जीवनसूत्र ? बन्धुओ। हम उन अज्ञ एवं अभिनिवेशी लोगों को बताना चाहेंगे कि समग्र विश्व, सारी मानवता जिस 'ऋग्वेद' को मानव जाति का आदिग्रन्थ एवं प्रमाण स्वीकार करता है, जरा उसके सूक्तों उसकी ऋचाओं, स्मृतिग्रंथों-पुराणों उपनिषदों के शताधिक वचनों को एक बार तो देख लीजिए, पढ़ लीजिए, क्या कहते हैं, वे अधिक नहीं, केवल २, ३ मन्त्र हम आपके समक्ष दोहराते हैं। ऋग्वेद प्रथम-मण्डल के १०६ वें सूक्त का तीसरा मन्त्र कहता है-

अवन्तु नः पितरः सुप्रवाचना, उत देवी देवपुत्रे ऋतावधा।

रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो, विश्वस्मान्नो अहंसो निष्पिपर्त्तन।

दशममण्डल के १५१ वें सूक्त का द्वितीय मन्त्र कह रहा है-

'प्रिय श्रद्धे ददत्तः, प्रिय श्रद्धे दिदासतः।

प्रिय भोजेषु यज्वस्विदं म उदितं कृधि।।

श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां माध्यन्दिनं परि।

श्रद्धा सूर्यस्य निम्नुचि श्रद्धे श्रद्धापयेह नः।।

ऐसे सैकड़ों प्रमाण हैं- किन्तु यहाँ विस्तारभय से सबका वाचन सम्भव भी नहीं और उपादेय भी नहीं है। तात्पर्य यही है, कि जिस चन्द्रलोक स्थित महानात्मा के लिए पावन श्राद्ध कर्म विहित है, वह शाश्वत है और उसका एक निर्धारित एवं निश्चित स्वरूप है।

क्या है यह आत्मा और कैसा है इसका स्वरूप। अब हम आपके समक्ष इसके स्वरूप का विवेचन प्रस्तुत करेंगे। वस्तुत: आत्मा के दो मुख्य विवर्त हैं- अखण्ड और सखण्ड। अखण्डात्मा अजर-अमर एवं चिन्तन से परे है और उसकी शक्ति एवं कार्यों का केवल अनुमान किया जा सकता है। सखण्डात्मा के चार विकसित स्वरूप हैं ऋषि, पितर, देव एवं मनुष्य। चारों एक दूजे से संयुक्त हैं। इनकी उत्तरोत्तर विकासावस्था का मूल स्रोत तो वही असत् एवं अखण्ड परमात्मा है, जैसा कि श्रुति कहती है, किन्तु सखण्डावस्था का सम्पूर्ण नियन्त्रण पञ्चपर्वा सृष्टि द्वारा संचालित है- ये पर्व है स्वयंभू, परमेष्ठी, सूर्य, पृथ्वी एवं चन्द्रमा। स्वयंभू वायुरूप में केन्द्र में बैठा शेष चारों पर्वों का संचालन कर रहा है-परमेष्ठी जल रूप में विद्यमान होकर प्राण-संचार कर रहा है, और शेष तीनों सूर्य-पृथ्वी एवं चन्द्रमा प्रत्यक्षत: हमारे जीवन को नियन्त्रित कर रहे हैं। इन तीनों की भूमिका मानव-जीवन के संचालन में महती है, किन्तु केन्द्रीभूत स्वयंभू एवं परमेष्ठी की सहायता के बिना ये भी पंगु हैं, प्रत्यक्ष रूप में समझा जाए तो यह कहना होगा, कि मानव-जीवन अन्य सभी पदार्थों के अभाव में अस्तित्व धारण कर सकता है, किन्तु जल एवं वायु के अभाव में उसका जीवन क्षणिक भी संभव नहीं है।

शेष तीनों में सूर्य विज्ञानात्मा बनकर हमारे शरीर को नियन्त्रित करता है-प्रज्ञा को जगाता है। तब ही लोक में मनुष्य ऐसे वाक्यों का प्रयोग करता है-

''यह बात मैं ठीक तरह से समझ गया हूँ''

अथवा,

यह बात हमारी समझ में नहीं आयी।

या फिर,

हमारा ध्यान तो कहीं और था, उस ओर दौड़ता ही नहीं। ये सब सूर्य-संचालित प्रज्ञानात्मा से संचालित हैं, जैसा कि ऋग्वेद कहता है-

'सूर्यो आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'

इसी प्रकार पृथ्वीपिण्ड की भूमिका हमारे पञ्चभूतात्मक शरीरनिर्माण तक ही सीमित है- अस्थि, मज्जा

मांस रक्तादि समस्त पदार्थों का सृजन अग्न्यात्मक पृथिवी से ही निर्मित एवं संचालित है।

अब क्रम है चन्द्रमा का, जिसका सम्बन्ध मन से है। जागृत-सुषुप्ति-स्वप्नावस्था सभी का सम्बन्ध इसी मन से है और चान्द्र मन ही इस भौतिक शरीर को नियन्त्रित करता है, इसी का प्रभाव है, कि मनुष्य चिरकाल तक एक ही मुद्रा में नहीं बैठ सकता। यही मन मृत्यु के अनन्तर 'महानात्मा' का रूप धारण कर पुनः चन्द्र में लीन हो जाता है। 'श्राद्ध' का सम्बन्ध इसी से है, क्योंकि इसका आरम्भक भी चन्द्र है और लय भी चन्द्र है कर्मात्मा तो केवल १३ माह की यात्रा तक इसके साथ जाता है और इसके पश्चात् पृथक होकर अपनी नयी जीवन-यात्रा प्रारम्भ करता है।

इस महानात्मा का स्वरूप भी त्रिगुणात्मक है-सत्त्व रजस् एवं तमस् से युक्त। इसी से हमारी भूतमयी की आकृति, प्राणमयी प्रकृति एवं मनोमयी अहंकृति का निर्माण होता है।

अब एक प्रश्न सामने आता है कि एक ही आत्मा अनेक भागों में कैसे बँट गया? शताधिक व्याख्याताओं की कृपा का फल है, कि इस सामान्य जन एवं समाज में आत्मा के स्वरूप को लेकर अनेक भ्रान्तियाँ फैली हैं। अतः यह आवश्यक है कि 'आत्मा' के भेदों को यथार्थ रूप में समझा जाए।

प्रत्येक पदार्थ का स्वरूप दो भागों में विभक्त रहता है- एक उक्थ अर्थात् केन्द्र और दूसरा अर्कमण्डल।

उदाहरण के लिए सूर्य को ही ले लीजिए। सूर्य का अपना मण्डल 'उक्थ' है और उससे उठ कर चारों ओर फैलने वाली राश्मियाँ 'अर्क' हैं। ठीक इसी प्रकार परमेष्ठी प्रजापति भी केन्द्र में उक्थ बन निर्माण कर रहा है और सूर्य, पृथ्वी, चन्द्र तीनों भूतात्मा, प्राणात्मा और भोक्तात्मा बन कर हमारी आकृति, प्रकृति और अहंकृति अर्थात् मन का निर्माण कर रहे हैं।

एक प्रश्न और। आखिर जीवन-मृत्यु, महानात्मा-कर्मात्मा का यह समस्त प्रपञ्च क्यों? इसका सरल उत्तर है गीता का यह वचन 'जातस्य हि ध्रुवं मृत्यु, ध्रुवं जन्म मृतस्य च'। यह परिवर्तन केवल 'वासांसि जीर्णानि०' की भाँति पुराने वस्त्र त्याग कर नवीन-वस्त्र धारण करने के समान है। आधुनिक विज्ञान भी स्वीकार करता है, कि यह सूर्य किसी दिन उत्पन्न हुआ था- आज वह पूर्व जैसा नहीं है- प्रतिक्षण पुराना पड़ रहा है और एक दिन ऐसा आयेगा, कि वह भी सर्वथा नष्ट हो जायेगा। हर पदार्थ की 'द्विनियति' है- जन्मना और मृत्यु को प्राप्त होना।

अत: लौकिक अथवा अलौकिक, सामाजिक अथवा शास्त्रीय सभी दृष्टियों से सिद्ध है कि मृत्यु अवश्यम्भावी है और मृत्यु के पश्चात् शरीरस्थ 'आत्मा' इसे त्याग कर अन्यत्र प्रस्थान करता है। वैदिक-दृष्टि से उस आत्मा का स्वरूप है- 'महानात्मा' जो 'पितर' स्वरूप में चन्द्रलोक में जाकर स्थित हो जाता है और श्रद्धा-सूत्र से हमसे निरन्तर जुड़ा रहता है। ये पितर किस-किस स्वरूप में है, क्या हमारे भौतिक जीवन के अतिरिक्त हमारे प्राकृतिक-परिवेश को भी प्रभावित करते हैं, हमारा सम्बन्ध इनसे कब तक और किस अवस्था में रहता है ? शरीर त्यागान्तर महानात्मा से पृथक् हमारे भूतात्मा की क्या गति होती है ?

इत्यादि अनेक जिज्ञासाएँ भी मानव-सुलभ स्वभाव से उत्थित होना स्वाभाविक है। आगामी तीन वार्ताओं में इनका समुचित समाधान करने का प्रयास किया जाएगा।

अत: आज की इस प्रथम वार्ता का सार-संक्षेप यह है कि 'श्राद्ध विज्ञान' कोरी आस्तिकता नहीं है और न ही असंख्य भारतीयों का अन्धविश्वास, अपितु यह समग्र मानव जाति के आध्यात्मिक आधिभौतिक एवं आधिदैविक जीवन सूत्रों से जुड़ा वैज्ञानिक सत्य है, जो मानव के व्यक्तिगत जीवन के साथ उसके परिवार, समाज एवं समग्र परिवेश को भी पूर्णत: प्रभावित करता है।

आइए। बिना किसी धर्म, जाति, समाज, क्षेत्र के भेदभाव के हम अपने मृत पूर्वजों के प्रति नैमित्तिक एवं पार्वण 'श्राद्ध' को सम्पन्न कर अपने परिवार एवं समाज का जीवन सुखद एवं निष्कंटक बनाएँ।

।। ॐ तत् सत्।।